भवसागर की यात्रा

(एक भयावह दृश्य)

सहारा लिया अब तक जिस-जिस का हमने,
वो खुद डूबते थे भँवर में बिचारे ।
सहारा उसी का सहारा सही है,
ये चलती है दुनिया जिस के सहारे ।

प्रकाशक
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५
भारतवर्ष

प्रथम संस्करण

प्रकाशित १५ अगस्त २०१७

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, भाद्रपद, कृष्णपक्ष, २०७४ विक्रम सम्वत्

सर्वाधिकार सुरक्षित २०१७ – श्री मानमंदिर सेवा संस्थान

Copyright© 2017 – Shri Maan Mandir Sewa Sansthan

http://www.maanmandir.org

ms@maanmandir.org

प्रकाशकीय

आधुनिककाल के भौतिकतावादी वातावरण में भौतिक शिक्षा प्राप्त करने वाले और अपने को विकसित मानने वाले मनुष्यों को अपनी दयनीय दशा का ज्ञान ही नहीं है । आधुनिक शिक्षा में ज्ञान के इस महत्वपूर्ण बिन्दु का नितान्त अभाव है कि जीव अनादिकाल से इस दुखद संसार में जन्म और मृत्यु के दुःसह कष्ट को भोगते हुए चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है । इसी को 'भवसागर की यात्रा' कहा जाता है । श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान से प्रकाशित इस पुस्तक द्वारा संक्षेप में श्रीमद्भागवत में वर्णित जीवों की इस भयानक यात्रा का वर्णन किया गया है । यह लेख परमपूज्य ब्रजनिष्ठ संत श्रद्धेय श्रीरमेशबाबा महाराज जी के दिव्य सत्संग से लिया गया है । श्रीबाबा महाराज ने बहुत ही सरलता पूर्वक श्रीमद्भागवत के इस दुरूह विषय की इस लेख में व्याख्या की है । कलियुग रूपी करालकाल के आघात से जर्जर हुई मानव जाति को यह संक्षिप्त पुस्तिका भवसागर की उसकी भयानक यात्रा का ज्ञान कराती हुई सुगमता पूर्वक इससे उबारने में सहायिका सिद्ध होगी ।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है ।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में । सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य-विभूति का प्रकर्ष-आर्ष जीवन-चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया, अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की ।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया । माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे । ईश्वरीय-योजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में । दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य

दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान-सुख अप्राप्य रहा, संतान-प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ, अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र-कामना ने व्यथित किया । पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया । आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया । शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है ।"

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया ।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से । सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीत-मार्तण्डों को । प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह

सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का । अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके । अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर ।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा । "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में ।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पद्मों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना । मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया । मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है । बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए । श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना

पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया ।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा । मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है । उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता । मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी । ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे । फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया ।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं । श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२

हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है । ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया । अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "श्रीराधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज-पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा । समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनाम-संकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया । दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी । गौवंश के रक्षार्थ गत् ९ वर्ष पूर्व माताजी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज ४५,००० से अधिक गायों का मातृवत् पालन हो रहा है । संग्रह परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है ।

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने । गत पञ्चषष्टि (६५) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं । ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं । असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं,

विलक्षण अनुभूतियाँ है, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन है, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय । वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व । रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया ।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है । आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है । आपकी अनुपम कृतियाँ–श्री रसिया रासेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं ।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है । साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन । दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी । सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत है। ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है ।

आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है ।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब भगवान् प्रकट हुए तो वहाँ उपस्थित ब्रह्मा-शिव, देव-गन्धर्वादि सभी ने उनकी स्तुति की; सदस्यों ने स्तुति में कहा –

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र-
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥

(भा. ४/७/२८)

हे आश्रयदाता प्रभो! यह जीव जबसे आपके अभयप्रद चरणकमलों से अलग हुआ है, तभी से इस संसार मार्ग में भटक रहा है । कितना समय हो गया भटकते-भटकते ? कोई निश्चित समय नहीं है अर्थात् अनादिकाल से । श्रीतुलसीदास जी ने विनयपत्रिका में लिखा है –

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो,
तबतें देह गेह निज जान्यो ।

जब से इसने देह-गेह को अपना माना है, तब से ही यह आपसे अलग हो गया है । '***उत्पत्ति***' माने जब से यह उत्पन्न

हुआ है तभी से इसी भवपथ (संसार मार्ग) पर चल रहा है । चौरासी लाख योनियों में इसको जन्मते-मरते न जाने कितने जन्म बीत गए, कितनी बार यह पैदा हुआ, कितनी बार मरा इसकी कोई गणना भी नहीं कर सकता । जन्म लेता है फिर मर जाता है । सभी चराचर जीव 'पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े, मनुष्यादि' यात्रा कर रहे हैं । कौन सी यात्रा? संसार की यात्रा। मरने के बाद भी यह यात्रा खत्म नहीं होती है, सदा जारी रहती है । यदि कोई सोचे कि चलो मरने के बाद तो आराम मिल जाएगा, बोले – नहीं, इस यात्रा में मरने के बाद भी आराम नहीं मिलता है । मरने से बस इतना आराम मिलता है जैसे कोई व्यक्ति बड़ा भारी बोझ लेकर कहीं जा रहा है और रास्ते में चलते-चलते थक गया तो वह कंधा बदल लेता है अर्थात् इस कंधे पर से बोझ को दूसरे कन्धे पर रख लेता है, बस इतना ही आराम मृत्यु के बाद मिलता है, एक शरीर छूटा तुरन्त दूसरे शरीर की प्राप्ति हो जाती है । कुछ मूर्ख लोग इसी चक्कर में अधिक कष्ट में आत्महत्या कर लेते हैं कि मरने से आराम मिल

जाएगा अर्थात् कष्टों की निवृत्ति हो जायेगी । लेकिन उनकी ये धारणा बिल्कुल निराधार है क्योंकि इस संसार मार्ग में बीच में रुकने की, आराम करने की कोई जगह ही नहीं है । इसलिए ***'अशरण'*** शब्द का प्रयोग किया गया । ***'अशरण'*** जैसे समुद्र में तुमको फेंक दिया गया और वहाँ लहरों के सिवाय कोई रुकने की जगह नहीं है, वैसे ही इस संसार में कहीं रुकने की जगह नहीं है । बस चलते रहो-चलते रहो । ***'अशरण'*** का उदाहरण सूरदास जी ने दिया है –

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसैं उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ॥

'जहाज पर कोई पक्षी बैठा था, वह पक्षी समझ नहीं पाया कि यह समुद्र का जहाज है, जहाज चल पड़ा । पक्षी उड़ता है लेकिन पानी में चारों तरफ कहीं बैठने की जगह नहीं है तो उड़कर फिर जहाज पर वापस आ जाता है । यह ***'अशरण'*** का उदाहरण है । ***'अशरण'*** यानी कोई ऐसा स्टेशन नहीं है बीच में, जहाँ हम आराम कर सकें, चलते चलो और कष्ट भोगते चलो

बस इसी का नाम संसार है । इसीलिये गीता में भगवान् ने संसार को दुःखालय कहा।

यहाँ सुख प्राप्ति की आशा से जीव कर्म करता है लेकिन सुख की जगह मिलता है दुःख । इसके सारे कर्म – धन कमाना, विवाह करना, पुत्र-पुत्री पैदा करना, रहने के लिए आलीशान मकान बनाना, आदि होते हैं सुख के लिए किन्तु उनके साथ पचासों दुःख लिपट कर चले आते हैं ।

प्रह्लाद जी ने एक बड़ी अच्छी बात कही –

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥

(भा. ७/९/२५)

ये संसार की इच्छाएँ ऐसी हैं कि इनको सुनने में बड़ा सुख मिलता है । कोई करोड़पति आदमी है, उसके पास दस गाड़ियाँ हैं, सुनने में लगता है कि बड़ा सुखी है लेकिन वहाँ सुख नहीं है केवल सुनने में ही सुख मालूम पड़ता है जबकि है वो

आग क्योंकि मृगतृष्णा कभी बुझती नहीं है । प्यास बढ़ती ही जाती है । इस संसार में जितने सुख हैं, वे आग हैं और यह शरीर के लिए ही तो करता है मनुष्य; ब्याह करता है, बेटा-बेटी पैदा करता है और वह शरीर भी एक दिन उसे छोड़ देता है । जाने कितने रोग लगे हैं इस शरीर में, उनकी गिनती नहीं है, फिर भी जीव का मन कभी हटता नहीं है संसार से, यद्यपि विद्वान् है, पढ़ा-लिखा है लेकिन क्या कर रहा है, धधकती आग को शहद की बूंदों से बुझा रहा है । कहीं शहद से आग बुझती है? वे बूँदें भी मुश्किल से मिलती हैं । पैसा ऐसे ही नहीं मिलता, बड़ी मुश्किल से कमाओ, मुश्किल से मिलता है । ब्याह भी मुश्किल से होता है । मुश्किल से स्त्री आयी तब जाकर कहीं विवाह हुआ, फिर थोड़ी देर के लिए सुख मिला, वह भी मुश्किल से मिला, वह भी क्षणिक है । शरीर में इतनी भोगशक्ति कहाँ है और उन बूंदों से कामानल को बुझा रहा है । काम भयानक अग्नि है । क्या हुआ सुन्दर स्त्री मिल गयी, है तो मल-मूत्र की पिण्डी, क्या हुआ थोड़ी देर भोग लिया, क्षणिक भोग ही तो

रहा । हर प्राणी की यही स्थिति है, क्या अरबपति, क्या खरबपति?

अतः मरने से शान्ति नहीं मिलती, फिर दूसरा शरीर मिलता है, वह पहले से ही तैयार है क्योंकि ***'अशरण'*** है; कोई बीच की जगह नहीं है संसार की यात्रा में रुकने को कि मरने से तुमको छुट्टी मिल जायेगी ।

इस भव यात्रा में ***'उरुक्लेश'*** अर्थात् अत्यन्त क्लेश हैं, अनन्त कष्ट हैं – चाहे किसी भी योनि में चले जाओ, कीड़े-मकोड़े, गधा-कुत्ता, सर्प-बिच्छू कुछ भी बन जाओ हर योनि में अर्थात् प्रत्येक चर-अचर सभी योनियों में क्लेश ही क्लेश हैं।

चिड़िया बन जाओ तो बाज का डर है ।

चूहा बन जाओ तो सर्प का डर है ।

सर्प बनो तो नेवले का डर है ।

यानी कुछ भी बन जाओ सब जगह भय ही भय है । वहाँ काल रूपी भयंकर उग्र सर्प इसके पीछे लगा है, इसको ग्रसने के लिए । जाने कितनी बार इस काल ने हम लोगों को खाया । हम

बार-बार जन्म लेते हैं और काल आता है, हर बार खा जाता है । ये काल रूपी भयानक सर्प पीछा कर रहा है, चाहे कहीं भी चले जाओ, काल पीछा नहीं छोड़ता है । चाहे देवयोनि में जाओ, चाहे पशु बन जाओ, चाहे मनुष्य बन जाओ, यहाँ तक कि काल ब्रह्मा की भी आयु हरण करता है, दो परार्द्ध के बाद काल उनको भी ग्रसित कर लेता है ।

जिस समय काल आता है तो वह ये नहीं देखता कि यह आदमी मर जायेगा तो इसकी स्त्री अनाथ हो जायेगी, बच्चे अनाथ हो जायेंगे, वह तो उसी समय ले जाता है, प्राणों को जब खींचता है तो जीव को अनन्त कष्ट होता है –

जनमत मरत दुसह दुख होई ।

अगर काल उग्र न हो तो वह ऐसा काम कैसे कर पायेगा? उग्र रूप बनाकर आता है और ले जाता है ।

अस्तु यह जीव भाग रहा है और काल इसका पीछा कर रहा है । मनुष्य मकान क्यों बनाता है, काल से बचने के लिए कि मकान में सुरक्षित आराम से रहेंगे न चोर आ सकेंगे और न ही

सर्प-बिच्छू आदि, किन्तु चाहे कितनी भी ऊँची हवेली बना लो काल तो ढूँढ़ ही लेगा तुमको । तुम उससे बचकर भाग नहीं सकते, वह हर समय पीछे लगा है और थोड़ी देर में एकदम चट कर जायेगा जैसे सर्प चूहे को खा जाता है । तुम भाग नहीं सकते हो, क्यो? क्योंकि विषयरूपी मृगतृष्णा में बंधे हुए हो । (जैसे – रेगिस्तान में प्यासे हिरन को बालू (रेत) पर सूर्य की किरणें पड़ने पर जल का आभास होता है और वह भागता जाता है पर कहीं पानी नहीं मिलता, अन्ततोगत्वा वह मर जाता है, इसको मृगतृष्णा कहते हैं) । उसी तरह मनुष्य अपनी इन्द्रियों की प्यास बुझाने के लिए लड्डु-पेड़ा खाता है, विवाह करता है, भोग भोगता है लेकिन उससे बुझने की जगह प्यास और बढ़ती है । हमलोग अनादिकाल से प्यास बुझाना चाहते हैं, चाहे मनुष्य हो, पशु हो, पक्षी हो, देवता हो, कोई भी हो, ये सब प्यास बुझाने के लिए दौड़ रहे हैं । प्यास बुझाने के लिए इंद्र अगणित अप्सराओं को भोगता है लेकिन प्यास नहीं बुझती है । मनुष्य प्यास बुझाने के लिए दौड़ता रहता है, कभी मकान बनाता है,

पैसा पैदा करता है, विवाह करता है लेकिन धन की, मान-सम्मान की, भोगों की प्यास कभी नहीं बुझती, इसे 'मृगतृष्णा' कहते हैं । यह 'तृष्णा' माने प्यास बनी ही रहती है और कमा लें, और कमा लें, और भोग भोग लें, और संसार में सम्मान प्राप्त कर लें, और संग्रह कर लें । इसी तरह हम लोग मृगतृष्णा में फँसे हैं । बच्चा पैदा हुआ तो सोचते हैं अब सुख मिलेगा, अब बच्चा बड़ा होगा, वहाँ सुख है परन्तु सुख कहीं है नहीं । इसको मृगतृष्णा कहते हैं । इस संसार में कहीं भी सुख नहीं है । सुख की आशा से मनुष्य ब्याह करता है, सुख की आशा से बच्चे पैदा करता है, सुख की आशा से बच्चों का पालन-पोषण करता है और सुख कहीं नहीं है । सुख पाने के चक्कर में, घर में तमाम सामग्री इकठ्ठी करते-करते मर जाता है – फ्रिज, टेलीविजन, गाड़ी ....आदि; जबकि इनसे सुख मिलेगा, यह मृगतृष्णा है । तो एक तो मृगतृष्णा में फँसे हुए हो और इसके अलावा तुम्हारे ऊपर बड़ा भारी बोझ है । क्या बोझ है? ***'आत्मगेहोरुभारः'*** अपने देह (शरीर) का, गेह (स्त्री, बेटा-बेटी, घर आदि) का;

उस बोझ को लेकर जीव दौड़ रहा है । जब विवाह होता है तब बोझ का पता चलता है, घर चाहिए, भोजन चाहिए, स्त्री आ गयी तो उसे कपड़ा, साज-श्रृंगार के सामान चाहिए, बच्चे हो गए तो उनके लिए चाहिए तो ये सब बोझ हैं; मनुष्य इन सब बोझों को लेकर दौड़ रहा है । इस बोझ को उठाकर तुम कहाँ तक भागोगे? अगर कोई कहे कि हम तो साधु हैं, हमारा कोई घर-परिवार नहीं, हम तो जंगल में रहते हैं तो वहाँ भी शरीर है तुम्हारा, उसका बोझ तुम्हारे ऊपर है । परिवार में जाओगे तो वहाँ परिवार का बोझ है । गृहस्थ का वजन कम नहीं है । बेटा हुआ, बेटी हुई, उनका ब्याह करो । बेटे के भी बेटे पैदा हो गये, लड़कियों के भी लड़के पैदा हो गये । बोझ बढ़ता जाता है, आज भार थोड़ा-सा है, कल दोगुना हो जाएगा ।

मनुष्य के दो पाँव हैं; जब ब्याह हुआ तो चौपाया बन गया, दो पाँव अपने और दो अपनी बहू के, चार पाँव वाला पशु बन गया । अब लड़का पैदा हुआ तो भौंरा बन गया, उसके छः पाँव होते हैं । फिर एक लड़की और हुई तो मकड़ी बन गया । मकड़ी

के आठ पाँव होते हैं । इसी तरह परिवार बढ़ते-बढ़ते फिर वह काँतर बन जाता है, जिसके सैकड़ों पाँव होते हैं । इस तरह से वह विषाक्त गोजर (कांतर) बन गया । इसीलिये लिखा है ***'उरुभारः'*** *यानी* वजन बढ़ता गया । इस संसार में वजन घटता नहीं है । कभी भी किसी का वजन नहीं घटा । सोचता है नौकरी लग गयी, अब लड़का कमाएगा, पत्नी को भी नौकरी में लगा दिया, सोचता है वजन घटेगा लेकिन वजन घटता नहीं है । संसार में वजन बढ़ता रहता है और वजन जब बढ़ता जाता है तो ज्यादा वजन के कारण कहीं गिरेगा, यदि किसी के ऊपर ज्यादा बोझ लाद दिया जाये तो आदमी कैसे चलेगा ***'उरुभार'*** इतना बोझ है कि तुम चल नहीं सकते । परन्तु फिर भी यात्री चलता रहता है । क्योंकि ***'संसरति इति संसारः'*** संसार रुकता नहीं, चलता रहता है । यात्रा कभी बन्द नहीं होगी, चाहे तुम मर जाओ अथवा जिन्दा रहो । चलना पड़ेगा तुमको । इस मार्ग में आगे गड्ढे हैं । **'द्वन्द्वश्वभ्रे'**–जिस रास्ते पर यह दौड़ रहा है, उस पर बहुत गड्ढे हैं, गड्ढा आया तो गिर पड़ा । गड्ढे क्या हैं? ये राग-

द्वेष रूपी गड्ढे हैं । किसी से द्वेष हो गया तो वह द्वेष का गड्ढा है और किसी से प्रेम हो गया तो वह राग का गड्ढा है । बीच में ऐसा गड्ढा आया कि सैकड़ों फीट नीचे गिर पड़े । गृहस्थ है तो स्त्री में राग हो गया, बच्चों में राग हो गया, राग के गड्ढे में चले गये, अब सारे जन्म गड्ढे के बाहर निकल नहीं पाओगे । द्वेष हुआ तो किसी से लड़ाई हुई, झगड़ा हुआ, द्वेष के गड्ढे में गिर पड़ा जीव । आजन्म फिर उस गड्ढे में पड़ा रहेगा । उस गड्ढे में बड़े हिसक जानवर हैं, शेर हैं, चीते हैं, भालू हैं । वे उस गड्ढे में भी तुमको खा जायेंगे, खा रहे हैं । संसार के जितने भी जीव हैं, जिनसे हम प्रेम करते हैं, चाहे स्त्री है, पुत्र है, ये ही उस गड्ढे के हिसक जानवर हैं । '***खलमृगभये***' उस गड्ढे के अन्दर दुष्ट जानवर बैठे हैं खाने के लिए, वे खा जाएँगे – अनेक सर्प, अजगर, शेर-चीते भरे पड़े हैं । दुष्ट जानवर क्या हैं? राजा बलि ने कहा कि बचपन में मेरे बाबा प्रह्लाद जी ने मुझे शिक्षा दी थी इसलिए मैं इन जानवरों से बच गया, संसार के चक्कर में नहीं पड़ा –

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥

(भा. ८/२२/९)

उन्होंने शिक्षा दी थी कि बेटा! यह शरीर एक दिन तुमको छोड़ जाएगा । यह शरीर धोखेबाज है । इस शरीर से प्रेम मत करना । अपने शरीर से हम लोग प्रेम करते हैं, इसीलिए मर रहे हैं और हम जिनको अपना बेटा-बेटी व स्त्री मान रहे हैं, वे डाकू हैं, सारा जीवन लूट लेते हैं । तुमने ब्याह किया, अब सारे जीवन पत्नी को रोटी खिलाओ, नौकरी करो नौकर की तरह, वह पत्नी डाकिनी है, बेटा-बेटी डाकू हैं, उनके लिए मकान बनाओ, कमाओ । इनको छोड़ दो, ये सब डाकू हैं । बोले – स्त्री तो डाकू नहीं है । बोले – वह तो नागिन है, संसार-चक्र में लाने के लिए वही तो एक रास्ता है, जहाँ से निकलो, वहाँ ही घुसो उसी योनि मार्ग में, स्त्री तो सबसे खतरनाक है । बोले – घर? घर तो एक गुफा है, जैसे गुफा में चूहा सारा जीवन काट लेता है । इसी तरह

मनुष्य घर बनाता है और सारा जीवन उसी में काट लेता है कि हम अपनी छत के नीचे बैठे हैं, खुश होता है । तो ये लोग या तो राग में फँसा लेंगे या द्वेष में । इसका परिणाम क्या होगा? वहाँ आग जल रही है उस गड्ढे में, उस आग में जलते रहोगे । जो शोक पैदा होता है, वही है आग । आग क्या है? शोक की आग, दुःख-शोक जो मन में रहता है – 'आज हमारा बेटा बीमार हुआ, आज बहू बीमार है, बहू मर गयी, आज हमारे पास पैसा नहीं है, आज यह नहीं है, वह नहीं है ।' इस शोक की आग में जलते रहोगे । किसी ने जरा-सा तिरस्कार (अपमान) कर दिया तो हृदय जलता है, अगर कहो कि वहाँ लोग हमको बचायेंगे, नहीं, '***अज्ञसार्थ***' यानी वहाँ अज्ञानी लोग झुण्ड के झुण्ड जल रहे हैं । उस गड्ढे में जितने पड़े हैं, सब जल रहे हैं । कोई आदमी ऐसा नहीं जो न्याय की, सच्चाई की बात कहे । सब लोग अज्ञान का ही समर्थन करते हैं । किसी ने निन्दा की तो सब लोग कहेंगे हाँ! हाँ! वह बड़ा खराब आदमी है । कोई भी ऐसा नहीं, जो समता की बात कहे, समता की बात सिखाये ।

जलने से बचाए क्योंकि सारा समूह अज्ञानियों का है, सभी इस शोक-दावाग्नि में जल रहे हैं, माँ जल रही है, बाप जल रहा है, बेटा जल रहा है, स्त्री जल रही है । कौन किसकी रक्षा कर सकता है? नारद जी ने युधिष्ठिर जी से कहा था –

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥

(भा. १/१३/४५)

सर्प ने मेंढक को पकड़ रखा है और मेंढक चिल्ला रहा है 'टर्र-टर्र' । मेंढक सर्प के मुँह में है, अब वह बेचारा किसी दूसरे कीड़े को क्या बचाएगा, वह स्वयं काल के मुँह में पड़ा हुआ है, सब एक-दूसरे को खा रहे हैं । कोई बचाने वाला नहीं है ।

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्र-
संसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं
प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥

(भा. ७/९/१६)

नृसिह भगवान् से प्रह्लाद जी कह रहे हैं – मैं डर गया हूँ । क्या हमारे भयानक रूप को देखकर डर गए हो–नृसिहदेव ने पूछा। प्रह्लाद जी बोले – नहीं, आपके इस भयानक नृसिह रूप को देखकर मुझे डर नहीं लगता है । फिर किसलिए डरते हो– नृसिह भगवान् ने पूछा ? प्रह्लाद जी बोले – इस भयानक संसार की जो चक्की है, यह पीस रही है हर प्राणी को, हर आदमी इसमें कष्ट पा रहा है और पिस रहा है । कैसे पिस रहा है? **'बद्धः'** उसके हाथ-पाँव बंधे हुए हैं । क्यों बंधे हैं? अपने कर्मों से बंधे हैं । हम गृहस्थ बने, बच्चे पैदा किये, मोह हुआ, ये हमारे कर्म थे । कर्मों से हम बंध गये हैं । भगवान् रस्सी लेकर बाँधने नहीं आये, न किसी को भगवान् ने बाँधा, न बाँधेंगे । जीव अपने कर्मों से बँधता है, बंधा है और चक्की में पिस रहा है । यह जीव संसार की चक्की में पिस तो रहा ही है साथ ही उस चक्की में सैकड़ों कीड़े लगे हैं, जो उसे खा रहे हैं । स्त्री, पुत्र, परिवार, माँ-बाप, भाई-बहन – ये सब जीव को खा रहे हैं क्योंकि सारा संसार स्वार्थी है, माँ है, बाप है, चाहे कोई भी है –

सुर नर मुनि सब कै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

(रा.च.मा.किष्कि. १२)

ये जीव को खा रहे हैं । कबीरदास जी ने कहा है –

मात कहै यह पुत्र हमारा, बहन कहे यह भाई ।
भाई कहे यह भुजा हमारी, हंस अकेला जाई ॥

माँ कहती है – यह हमारा बेटा है; बहन कहती है – यह मेरा भाई है; भाई कहता है – यह हमारी भुजा है, ये मेरा सगा भाई है । लेकिन कोई किसी का नहीं है, जब मौत हो जाती है तो –

पेट पकड़ कर माता रोवे, बाँह पकड़कर भाई ।
लिपट-चिपटकर तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई ॥

इस संसार का कोई भी नाता सच्चा नहीं है । ***'ग्रसतां प्रणीतः'*** ये परिवार के लोग तुमको कीड़े बनकर खा रहे हैं, और सारा जीवन खा जायेंगे । जैसे मादा बिच्छू से सैकड़ों बच्चे पैदा होते हैं एक साथ और सबसे पहले माँ के ही शरीर को खाते हैं और वह मोह में अपने शरीर को खिला देती है । सैकड़ों बिच्छू

खा रहे हैं और वह खिला रही है क्योंकि मोह है । अनन्त कष्ट पाता है मनुष्य लेकिन मोह को नहीं छोड़ता है ।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला ।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२१)

एक दो तरह के नहीं, हजारों कष्ट पैदा होते हैं मोह से, लेकिन मनुष्य मोह छोड़ नहीं सकता । प्रह्लाद जी कहते हैं कि उन लोगों के बीच में मैं बाँधकर डाल दिया गया हूँ और वे मुझे खा रहे हैं । स्त्री है, पुत्र है – सब खा रहे हैं, इनकी कामना-पूर्ति करोगे तो प्रेम करेंगे, नहीं तो प्रेम टूट जाता है, यह स्वार्थ-सिद्धि हेतु दिखावा मात्र है, सच्चा प्रेम नहीं है । इसीलिए संसार की यात्रा में जीव कष्ट भोग रहा है ।

यह यात्रा सदा के लिये खत्म कैसे होगी, कैसे इन दुखों से जीव को छुटकारा मिलेगा ?

बोले – बस सब कुछ छोड़कर भगवान् की शरण में चले जाओ तभी यह यात्रा खत्म होगी ।

क्या भगवान् हम जैसे पापियों को शरण देंगे?

बोले – भगवान् तो शरण देने के लिए हर समय तैयार हैं । तुम उनकी शरण में जाकर तो देखो, तुम पापी हो इसकी चिन्ता मत करो । भगवान् ने तो स्वयं कहा है –

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू ।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४४)

अथवा

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम् ॥

(वा.रा.युद्ध. १८/३३)

भगवान् कहते हैं – ***"जो एक बार भी 'हे नाथ ! मैं आपका हूँ, मुझे अपनी शरण में लीजिये' कहते हुए मेरे शरणागत होता है, उसे मैं उसी क्षण अभय दान दे देता हूँ ।"***

भगवान् के चरण ही हम लोगों का वास्तविक घर है । हम लोगों ने यहाँ नकली घर बनाये हैं । क्या उस घर में प्रवेश करने

को मिलेगा? हाँ, भगवान् 'शरणद' हैं अर्थात् दरवाजा खुला है । कभी भी आ जाओ ।

दीन बंधु का द्वार खुला है, आना हो सो आवै ।
अभय दान का दान बँट रहा, लेना हो ले जावै ॥

किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि हम इस यात्रा में अनन्त कष्ट भोगते रहते हैं परन्तु भगवान् की शरण में नहीं जाते । अगर चले जाएँ तो हमेशा के लिए इन दुखों से मुक्त हो जाएँ । क्यों नहीं शरण में जाते हैं? क्योंकि काम से ग्रसित हैं , सांसारिक कामनाओं से घिरे हुए हैं । विवाह हो गया तो मनुष्य सोचता है, कुछ दिन परिवार का सुख ले लें, अब बच्चे हो गये तो सोचता है कि बड़े हो जायें, बड़े होने पर सबका विवाह कर दें, फिर नाती-पंती हो गये, उनका भी विवाह कर दें, अपने पाँवों पर खड़े हो जाएँ, ऐसा करते-करते मनुष्य मर जाता है । ये कामनायें कभी भी जीव को भगवान् की शरण में नहीं जाने देती हैं । ये कामनाएं धधकती अग्नि की तरह हैं जैसे अग्नि में जितना घी डालो उतना ही और बढ़ती है उसी तरह जितना भी कामनाओं

को पूरा करो उतनी ही बढ़ती रहती हैं । एक कामना खत्म नहीं हो पाती और दूसरी आ जाती है । इसीलिये हर आदमी काम-कातर है, वासना-पूर्ति के लिए मनुष्य धन इकट्ठा करता है, ब्याह करता है, घर बसाता है । लड़की सोचती है – हमारा ब्याह हो जाए, लड़का सोचता है – घरवाली आ जाए तो सुख आयेगा । यह क्या है? ***'कामोपसृष्टः'*** ये कामनायें उसे अनन्त आग के गड्ढे में ले जाएँगीं, जिस गड्ढे में सदा जलता रहेगा । ***'शोकदावेऽज्ञसार्थ'*** ऐसा गड्ढा है कि उसमें हर समय आग जलती रहती है । किसी भी समय आग बुझती नहीं है । गृहस्थ क्या है? कामना की पिटारी है । लड़का पैदा हुआ – अब लड़के के लिए खिलौना लाओ, लड़का चलेगा तो उसके लिए लोग गाड़ी खरीदते हैं । फिर बड़ा हुआ तो स्कूल में दाखिला कराओ, स्कूल में दाखिला कराया तो स्कूल ड्रेस चाहिए, किताब चाहिए, फीस चाहिए, कामनाएँ बढ़ती रहती हैं; इसी तरह से लड़की है, उसके लिए अभी से पैसा इकट्ठा करेंगे ब्याह के लिए और ब्याह सहज

नहीं है आजकल । तुलसीदास जी ने लिखा है –**'गृह कारज नाना जंजाला'**–सैकड़ों जाल हैं गृहस्थ में ।

इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है –

"An unmarried person is half free from the world."

'जो अविवाहित व्यक्ति है, वह आधा भवसागर पार हो गया ।'

घर में स्त्री आयी तो अब स्त्री के लिए अधिक सुरक्षा चाहिए, मकान बनाना पड़ेगा । स्त्री के लिए अधिक सामान चाहिए, आभूषण चाहिए, अलग कपड़े चाहिए; ये सब चीजें उसे अनेक जालों में फँसा लेती हैं । जीव कभी भगवान् की शरण में नहीं पहुँच पाता है । प्रह्लाद जी ने भी यही कहा कि यह संसार सर्पों का कुआँ है । जीव इसमें गिरा हुआ है, लाखों सर्प इसमें उसे खा रहे हैं । मनुष्य इस कुएँ में गिरता क्यों है ? कामनाओं के कारण, एक कामना गयी तो दूसरी कामना आ गयी और मनुष्य कुएँ के भीतर गिरता जाता है, गिरता जा रहा है । इस तरह

कामनाओं में फँसे रहने के कारण यह जीव भगवान् के चरणकमलों की शरण में नहीं जा पाता और इसीलिये इसकी यह अनंत कष्टदायिनी भव-यात्रा कभी खत्म नहीं होती, कभी भी इससे उसे छुटकारा नहीं मिल पाता है ।

<u>यह यात्रा खत्म तब होगी, जब हम सर्वात्म-भाव से भगवान् की शरण में जायेंगे ।</u>

भगवान् में गीता में उद्घोष किया –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(गी. १८/६२)

'तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा, उसी की कृपा से ही तुझे परम शान्ति एवं शाश्वत स्थान अर्थात् भगवद्धाम की प्राप्ति होगी ।'